The International Journal of Advanced Research in Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 3 Issue 2, Dec. 2020

जगदीश चन्द्र के उपन्यास 'जमीन तो अपनी थी

लक्ष्मी रानी
बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार
विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सूक्ष्मीकरण

'जमीन अपनी तो थीं ' उपन्यास त्रयी का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास में काली का बेटा आई. ए. एस. अधिकारी बन गया लेकिन उसे अपने पिता का जमीन से लगाव बहुत अच्छा नहीं लगता काली व्यक्तिवादी नहीं है। वह जमीन से जुड़कर अपनी बिरादरी का दुख–दर्द दूर करना चाहता है। यह उपन्यास उन सफेदपोश, सुविधा भोगी और आरक्षण का लाभ लेकर ऊँचे ओहदे पर बैठे लोगों पर कटाक्ष करता है, जो यह भूल जाता है कि उनका एक सामाजिक दायित्व भी है। किसी उपन्यास की महत्ता की मुख्य वजह यह होती है कि वह कहा तक सामाजिक विकास के नक्शों में ढ़ालने में कामयाबी पाता हैं। इस अध्ययन का उदेश्य "जमीन तो अपनी थी" उपन्यास में दलित चिन्तन के कारण को जानना है।

परिचय

जगदीश चन्द्र (1930–1996 ई.) हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यासकार है। उन्हें दलित चेतना का प्रखर उपन्यासकार माना जाता है। इस मान्यता के पीछे उनके तीनों उपन्यास की अन्तर्वस्तु है। ये उपन्यास है– 'धरती धन न अपना' (1972 ई.) में 'नरककुण्ड में बास' (1994 ई.) और 'जमीन तो अपनी थी' (2001 ई.) इन उपन्यासों के आधार पर उन्हें दलित जीवन के उपन्यासकार के रूप में रेखंकित करते हुए चमन लाल ने लिखा है–'धरती धन न अपना' नरककुण्ड में बास' व 'जमीन तो अपनी थी' शीर्षकों के अन्तर्गत जगदीश चन्द्र ने जिस उपन्यास त्रयी की रचना की है, वह हिन्दी–उपन्यास व समूचे भारतीय समाज के उस उपेक्षित वर्ग का अत्यंत यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, जो इस समय राजनीतिक क्षेत्र में भी चर्चित है, व साहित्य में भी। उसे दलित–साहित्य के अन्तर्गत नए ढंग से परिभाषित किया जा रहा है।

इन तीनों के अतिरिक्त उनके आठ और उपन्यास है– यादो के पहाड़ (1966 ई.)' आधापुल ' (1972 ई.) ' टुन्डालाट ' (1978 ई.) ' कभी न छोड़े खेत ' (1976 ई.) ' घास गोदाम ' (1985 ई) ' मुट्ठी भर कांकर ' (1982 ई.) ' ऑपरेशन ब्लू स्टार ' (1996 ई.) ' लाट की वापसी ' (2000 ई.) इनके अतिरिक्त उनकी ' रचनावली ' के दूसरे खण्ड में उनका एक अधूरा उपन्यास भी संकलित है। ' शताब्दियों का दर्द '।

' जमीन तो अपनी थी ' का ताल्लुक श्रम से पाई और सींची जमीन के साथ है। काली अपनी जमीन पर पक्का घर बनाकर भी वहां से विस्थापित होकर शहर आ जाने से जुड़ा नरक भुगतकर यहां तक पहुंचता है। आखिर उसे काम व्यवसाय और एक घर नसीब होता है, जिसे अपने–अपने अनुभव, संघर्ष और विवेक से हासिल किया है। परन्तु साथ ही वह यह भी देख पा रहा है कि उसके आस–पास जितने भी दुसरे दलित भाई हैं, उनमें से अधिकांश के पास जो कुछ आ रहा है, वह उनके श्रम की

वजह से उतना नहीं, जितना आरक्षण और उसके इर्द–गिर्द बुनी जा रही सत्ता–सियासत में हिस्सेदारी से आया है। यह सत्ता–सियासत इन दलित को नए श्रेणी–स्तरों में विभाजित कर रही है इनको अपनें अभिजात वर्ग समूह हैं–अफसर हैं, राजनेता हैं, दलाल हैं, और मौकाप्रस्त लोगों की एक भीड़ है। इन सबके बीच काली अपनी जमीनी चतना की वजह से बहुत अलहदा या अजनबी हो गया महसूस करता है। अपनें ही लोग उसे और उसके दूसरे साथियों के हिस्सों की जमीनें व जायदादें हड़पने के लिए, उन्हीं के साथ छल करते दिखाई देते हैं। यह शहरी संस्कृति का पतनशील चरित्र है, जो दलितों में पनप रहे एक मध्यवर्गनुमा जनसमूह के चरित्र को भी भ्रष्ट और आपराधिक बनाने का काम करता है। अब काली को ' अपने ही घर के इस अंतर्विरोध से जूझना पड़ता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

समाज की सफाई से पहले घर की सफाई जरूरी लगती है। यह सब सामाजिक व मूलयगत ' एलिएनेशन ' की प्रक्रियाओं को जन्म देता है। काली इनसे उबरने की कोशिश में डूबता–उतरता–जूझता आखिर अपने एक बेटे को दी, आरक्षण की मदद से आई. ए. एस. अफसर बनता हूआ देखता है। परन्तु जब उसके उस नय महलनुमा घर में जाकर ठहरता है, तो उसका दम घूट जाता है। सामाजिक अधिरचनाएं भब्य है, पर उनमे जमीन से दुश्मनी का भाव भी हैं, जो काली को फिर से अपनी जमीन में लौटा लाने की वजह बनता है। काली की यह अनुभूति कि वह उसकी जमीन अपनी तो थी ' एक विशुद्ध भारतीय चेतना की उपज है जो परंपरारूढ़ नहीं, पर परंपरा का ऐसे मनुष्य – भाव में अंतर्विकास है, जिसे हमें आधुनिक होने से जुड़ी विकास–प्रक्रियाओं के दरम्यान भी महफूज रखने की जरूरत है। यह विवेक चेतना नहीं बची तो संभवतः भारत भी, भारत के रूप में, दुनिया के नक्शे पर बचेगा नहीं।

' जमीन अपनी तो थीं ' उपन्यास त्रयी का अंतिम उपन्यास है। इस उपन्यास में काली का बेटा आई. ए. एस. अधिकारी बन गया लेकिन उसे अपने पिता का जमीन से लगाव बहुत अच्छा नहीं लगता काली व्यक्तिवादी नहीं है। वह जमीन से जुड़कर अपनी बिरादरी का दुख–दर्द दूर करना चाहता है। यह उपन्यास उन सफेदपोश, सुविधा भोगी और आरक्षण का लाभ लेकर ऊँचे ओहदे पर बैठे लोगों पर कटाक्ष करता है, जो यह भूल जाता है कि उनका एक सामाजिक दायित्व भी है।

सेठ रामप्रकाश और प्रशासनिक पदाधिकारी कुलतार सिंह जोहल ऐसे ही लोगों में है जो व्यक्तिगत लाभ के लिए अपने वर्ग से द्रोह करते हैं।

इस प्रकार जगदीश चन्द्र के उपन्यास जीवन के कट्टु प्रश्नों से मुठभेड़ करने वाले उपन्यास है। उनमें दलित चेतना की प्रखरता है तो राजनीतिक चेतना की भास्वरता भी।

कुछ मिलकर कहा जाय तो युगीन यथार्थ के सजीव चित्रण के बावजूद उनमें मानवीय संवेदना की अनुभूति कहीं कम नहीं हुई है। दलितो को अब अपनी जाति से नहीं कर्मों से श्रेष्ठ बनना है। उपान्यासकार ने इन परिस्थितियों का चित्रण करते हुए तत्कालिन परिस्थितियों में सामाजिक वर्ण व्यवस्था में अर्थ और कर्म के महत्व को रेखांकित करते हुए स्पष्ट किया है कि सारी व्यवस्था कर्म और अर्थ के आधार पर ही मुल्यांकित होती है। विपन्नों को सम्पन्नता की श्रेणी में लाकर अछूतों का उद्धार किया जा सकता है। गाँधीवादी दर्शन के मूल में भी यही तथ्य निहित है इसलिए जगदीश चन्द्र भी परंपरा से बाहर जाकर नहीं सोच पाते हैं।

संदर्भ–सूचीः

1. जगदीश चन्द्र दलित जीवन के उपान्यासकार , सं0 चमनलाला, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण, 2010 ई0 पृष्ठ–7
2. जगदीश चन्द्र रचनावली, चार खण्ड, सं–विनोद शाही, आधार प्रकाशन, पंचकूला, प्रथम संस्करण, 2011 ई0
3. डा0 एम0 एस0 गुप्ता–"सामाजिक अनुसंधान (शोध)", साहित्य भवन
4. डा0 आर0 सी0 कोठारी–"रिसर्च मेथोडोलॉजी", मेथडर्स एण्ड टेक्नोलॉजी, 1985
5. आधुनिक हिन्दी उपान्यास, सं0–भीष्म सहनी, रामजी मिश्र, भगवती प्रसाद निदारिया, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1980 ई0, पृष्ठ–357